भारत सरकार अधिनियम, 1935

अधिनियम के पारित होने की परिस्थितियां

वर्ष 1919 के मांटफोर्ड सुधारों को कांग्रेस ने "असंतोषजनक, अपर्याप्त और निराशाजनक" कहा। इसने दिसम्बर 1921 में असहयोग आंदोलन प्रारंभ किया, जिसमें केंद्रीय एवं प्रांतीय विधानमंडलों का बहिष्कार सम्मिलित था। 1935 के भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के लिये प्रमुख उत्तरदायी कारक निम्न प्रकार थे–

स्वराज्य दल की भूमिका: 1919 के सुधारों के प्रति असंतोष धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। उदारवादी, जो लंबे समय तक सरकार के साथ सहयोग की नीति के पक्षधर थे, इन सुधारों को अपर्याप्त और असंतोषजनक मानने लगे थे। तत्पश्चात स्वराज्य दल ने इन सुधारों के विरोध में सक्रिय भूमिका निभायी। इस दल के गठन का तो उद्देश्य ही इनके विरोध से जुड़ा हुआ था। उद्देश्य यह था कि विधानमंडलों में प्रवेश कर इन सुधारों तथा उनसे सम्बद्ध किसी भी संवैधानिक प्रक्रिया को अवरुद्ध किया जाये।

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner

1923 के चुनावों में इस दल को मिली प्रचण्ड सफलता के लाभ को स्वराजियों ने विधेयक एवं सरकारी कार्यों के विरोध की ओर मोड़ दिया।

साइमन कमीशन की भूमिकाः 1927 में सरकार ने साइमन कमीशन की नियुक्ति कर अप्रत्यक्ष रूप से यह स्वीकार कर लिया था कि मोंट-फोर्ड सुधार असफल रहे हैं। दूसरी ओर, 1923 के चुनावों में कांग्रेस को मिली सफलता से भी सरकार भयातुर थी। एक और तर्क यह था कि लंदन में लॉर्ड बिरकनहैड भी कमीशन के गठन का श्रेय आगामी उदारवादी सरकार को नहीं देना चाहते थे।

कमीशन की रिपोर्ट में जो संस्तुतियां थीं, वे अप्रत्यक्ष रूप से मोंट-फोर्ड सुधारों की कमियों तथा कुछ अन्य सुधारों की आवश्यकताओं को रेखांकित कर रही थीं।

नेहरू रिपोर्टः नेहरू रिपोर्ट ने साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था की भरपूर आलोचना की तथा उसके स्थान पर अल्पसंख्यकों को जनसंख्या के आधार पर प्रतिनिधित्व देने की मांग की। इसने सम्पूर्ण भारत के लिये एक एकीकृत संविधान की रूपरेखा प्रस्तुत की, जिससे केंद्र तथा सभी प्रांतों को पूर्ण स्वायत्तता मिल सके।

लार्ड इरविन की डोमिनियन स्टेट्स से सम्बद्ध घोषणाः अक्टूबर 1929 में वायसराय ने रैम्जे मैक्डोनाल्ड के नेतृत्व में सत्ताधारी श्रमिक सरकार से विचार-विमर्श के उपरांत यह घोषणा की कि भारत में सुधारों का चरमोत्कर्ष डोमिनियन स्टेट्स प्राप्त करना है। इसके अतिरिक्त उसने साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर गोलमेज सम्मेलन में समीक्षा किये जाने की घोषणा भी की।

गोलमेज सम्मेलनों की भूमिकाः 1930, 1931 और 1932 में क्रमशः तीन गोलमेज सम्मेलन आयोजित किये गये, जिनका मुख्य उद्देश्य भारत में संवैधानिक विकास के मुद्दे पर विचार-विमर्श करना तथा आगे की रणनीति तय करना था। किंतु इन सम्मेलनों में कोई विशेष उपलब्धि हासिल नहीं हो सकी।

सविनय अवज्ञा आंदोलन तथा तत्कालीन अन्य परिस्थितियांः 1932-33 के राष्ट्रीय आंदोलन को यद्यपि सरकार दमन का सहारा लेकर दबाने में सफल तो हो गयी, किंतु उसे यह अहसास हो गया कि दमन की नीति द्वारा राष्ट्रवादी भावनाओं को ज्यादा दिन तक दबाया नहीं जा सकता। आगामी समय में किसी आंदोलन के जन्म लेने की संभावना को खत्म करने के लिये सरकार राष्ट्रीय आंदोलन को स्थायी रूप से दुर्बल करने पर विचार करने लगी। उसने कांग्रेस को विभक्त करने की योजना बनायी। इसी परिप्रेक्ष्य में उसने 1935 का भारत शासन अधिनियम प्रस्तुत किया। क्योंकि उसे उम्मीद थी कि संवैधानिक सुधारों के इस अधिनियम से कांग्रेस के एक खेमे को संतुष्ट एवं औपनिवेशिक प्रशासन में समाहित कर लिया जायेगा तथा राष्ट्रवादी आंदोलन की बची हुई शक्ति को दमन से समाप्त कर दिया जायेगा। अपनी इन्हीं नीतियों को वास्तविकता का जामा पहनाने के लिये ब्रिटिश संसद ने अगस्त 1935 में 'गवर्मेंट ऑफ इंडिया एक्ट, 1935' पारित किया।

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner

(नवंबर 1932 में तृतीय गोलमेज सम्मेलन, कांग्रेस की अनुपस्थिति में संपन्न हुआ। लेकिन विलिंगटन की अत्याचारी एवं आतंकवादी नीतियों के कारण सम्मेलन में कोई सर्वसम्मत निर्णय नहीं लिया जा सका)।

■ अधिनियम की मुख्य विशेषतायें

भारत सरकार अधिनियम, 1935 ब्रिटिश संसद ने अगस्त 1935 में पारित किया। इस अधिनियम के मुख्य प्रावधान निम्नानुसार थे–

1. एक अखिल भारतीय संघः इस अधिनियम के अनुसार, प्रस्तावित संघ में सभी ब्रिटिश भारतीय प्रांतों, मुख्य आयुक्त के प्रांतों तथा सभी भारतीय प्रांतों का सम्मिलित होना अनिवार्य था, किंतु देशी रियासतों का सम्मिलित होना वैकल्पिक था। इसके लिये दो शर्तें थीं–(i) रियासत के प्रतिनिधियों में न्यूनतम आधे प्रतिनिधि चुनने वाली रियासतें संघ में सम्मिलित न हों (ii) रियासतों की कुल जनसंख्या में से आधी जनसंख्या वाली रियासतें संघ में सम्मिलित न हों। जिन शर्तों पर इन सभी रियासतों को संघ में सम्मिलित होना था, उनका उल्लेख एक पत्र (instrument of Accession) में किया जाना था। चूंकि यह नहीं हो सका, इसलिये यह संघ कभी अस्तित्व में नहीं आया तथा 1946 तक केंद्र सरकार, भारत सरकार अधिनियम 1919 के प्रावधानों के अनुसार ही चलती रही।

2. संघीय व्यवस्थाः *कार्यपालिका* • गवर्नर-जनरल केंद्र में समस्त संविधान का केंद्र बिंदु था।

• प्रशासन के विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया–सुरक्षित एवं हस्तांतरित। सुरक्षित विषयों में–विदेशी मामले, रक्षा, जनजातीय क्षेत्र तथा धार्मिक मामले थे–जिनका प्रशासन गवर्नर-जनरल को कार्यकारी पार्षदों की सलाह पर करना था। कार्यकारी पार्षद, केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। हस्तांतरित विषयों में वे सभी अन्य विषय सम्मिलित थे, जो सुरक्षित विषयों में सम्मिलित नहीं थे। इन विषयों का प्रशासन गवर्नर-जनरल को उन मंत्रियों की सलाह से करना था, जिनका निर्वाचन व्यवस्थापिका द्वारा किया गया था। ये मंत्री केंद्रीय व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे तथा अविश्वास प्रस्ताव पारित होने पर उन्हें त्यागपत्र देना अनिवार्य था।

• देश की वित्तीय स्थिरता, भारतीय साख की रक्षा, भारत या उसके किसी भाग में शांति की रक्षा, अल्पसंख्यकों, सरकारी सेवकों तथा उनके आश्रितों की रक्षा, अंग्रेजी तथा बर्मी माल के विरुद्ध किसी भेदभाव से उसकी रक्षा, भारतीय राजाओं के हितों तथा सम्मान की रक्षा तथा अपनी निजी विवेकाधीन शक्तियों की रक्षा इत्यादि के संबंध में गवर्नर-जनरल को व्यक्तिगत निर्णय लेने का अधिकार था।

व्यवस्थापिकाः संघीय विधान मंडल (व्यवस्थापिका) द्विसदनीय होना था। जिसमें राज्य परिषद (उच्च सदन) तथा संघीय सभा (निम्न सदन) थी। राज्य परिषद एक

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner

स्थायी सदन था, जिसके एक-तिहाई सदस्य प्रत्येक 3 वर्ष के पश्चात चुने जाने थे। इसकी अधिकतम सदस्य संख्या 260 होनी थी, जिसमें से 156 प्रांतों के चुने हुए प्रतिनिधि और अधिकतम 104 रियासतों के प्रतिनिधि होने थे। जिन्हें सम्बद्ध राजाओं को मनोनीत करना था। संघीय सभा का कार्यकाल पांच वर्ष होना था। इसके सदस्यों में से 250 प्रांतों के और अधिकाधिक 125 सदस्य रियासतों के होने थे। रियासतों के सदस्य सम्बद्ध राजाओं द्वारा मनोनीत किये जाने थे, जबकि ब्रिटिश प्रांतों के सदस्य प्रांतीय विधान परिषदों द्वारा चुने जाने थे।

- यह एक अत्यंत विचित्र व्यवस्था थी तथा साधारण प्रचलन के विपरीत थी कि उच्च सदन के सदस्यों का चुनाव सीधे मतदाताओं द्वारा किया जाये तथा निम्न सदन, जो ज्यादा महत्वपूर्ण था उसके सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष तरीके से हो।
- इसी प्रकार राजाओं को उच्च सदन के 40 प्रतिशत तथा निम्न सदन के 33 प्रतिशत सदस्य मनोनीत करने थे।
- समस्त विषयों का बंटवारा तीन सूचियों में किया गया—केंद्रीय सूची, राज्य सूची तथा समवर्ती सूची।
- संघीय सभा के सदस्य मंत्रियों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव ला सकते थे। किंतु राज्य परिषद में अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकता था।
- धर्म-आधारित एवं जाति-आधारित निर्वाचन व्यवस्था को आगे भी जारी रहने देने की व्यवस्था की गयी।
- संघीय बजट का 80 प्रतिशत भाग ऐसा था, जिस पर विधानमंडल मताधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता था।
- गवर्नर-जनरल के अधिकार अत्यंत विस्तृत थे। वह—(क) अनुदान मांगों में कटौती कर सकता था (ख) विधान परिषद द्वारा अस्वीकार किये गये विधेयक का अनुमोदन कर सकता था। (ग) अध्यादेश जारी कर सकता था। (घ) किसी विधेयक के संबंध में अपने निशेषाधिकार (Veto) का प्रयोग कर सकता था तथा (ङ) दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन बुला सकता था।

3. प्रांतीय स्वायत्तता: • प्रांतों को स्वायत्तता प्रदान कर दी गयी।

- प्रांतों को स्वायत्तता एवं पृथक विधिक पहचान बनाने का अधिकार दिया गया।
- प्रांतों को भारत सचिव एवं गवर्नर-जनरल के 'आलाकमान वाले आदेशों' से मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार अब वे प्रत्यक्ष और सीधे तौर पर महामहिम ताज (crown) के अधीन आ गये।
- प्रांतों को स्वतंत्र आर्थिक शक्तियां एवं संसाधन दिये गये। प्रांतीय सरकारें अपने स्वयं की साख पर धन उधार ले सकती थीं।

कार्यपालिका • गर्वनर, प्रांत में ताज का मनोनीत प्रतिनिधि होता था, जो महामहिम ताज की ओर से समस्त कार्यों का संचालन एवं नियंत्रण करता था।

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner

• गवर्नर को अल्पसंख्यकों, लोक सेवकों के अधिकार, कानून एवं व्यवस्था, ब्रिटेन के व्यापारिक हितों तथा देशी रियासतों इत्यादि के संबंध में विशेष शक्तियां प्राप्त थीं।

• यदि गवर्नर यह अनुभव करे कि प्रांत का प्रशासन संवैधानिक उपबंधों के आधार पर नहीं चलाया जा रहा है, तो शासन का सम्पूर्ण भार वह अपने हाथों में ले सकता था।

व्यवस्थापिका • साम्प्रदायिक तथा अन्य वर्गों को पृथक प्रतिनिधित्व दिया गया। अधिनियम के मतदाता मंडलों का निर्धारण साम्प्रदायिक निर्णय तथा पूना समझौते के अनुसार किया गया।

• प्रांतीय विधान मंडलों का आकार तथा रचना विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न थी। अधिकांश प्रांतों में यह एक सदनीय तथा कुछ प्रांतों में यह द्विसदनीय थी। द्विसदनीय व्यवस्था में उच्च सदन, विधान परिषद तथा निम्न सदन, विधान सभा थी।

• सभी सदस्यों का निर्वाचन सीधे तौर पर होता था। मताधिकार में वृद्धि की गयी। पुरुषों के समान महिलाओं को भी मताधिकार प्रदान किया गया।

• सभी प्रांतीय विषयों का संचालन मंत्रियों द्वारा किया जाता था। ये सभी मंत्री एक प्रमुख (मुख्यमंत्री) के अधीन कार्य करते थे।

• मंत्री, अपने विभाग के कार्यों के प्रति जवाबदेह थे तथा व्यवस्थापिका में उनके विरुद्ध मतदान कर उन्हें हटाया जा सकता था।

प्रांतीय, व्यवस्थापिका-प्रांतीय तथा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बना सकती थी।

• अभी भी बजट का 40 प्रतिशत हिस्सा मताधिकार से बाहर था।

• गवर्नर- (क) विधेयक लौटा सकता था (ख) अध्यादेश जारी कर सकता था (ग) सरकारी कानूनों पर रोक लगा सकता था।

1935 के अधिनियम की अन्य धारायें: 1. संघीय न्यायालय की स्थापना।

2. नया संविधान अनम्य (Rigid) था। इसमें संशोधन करने की शक्ति केवल अंग्रेजी संसद को ही थी। भारतीय विधानमंडल केवल उसमें संशोधन का प्रस्ताव कर सकता था।

3. एक केंद्रीय बैंक (Reserve Bank of India) की स्थापना की गयी।

4. बर्मा तथा अदन को भारत के शासन से पृथक कर दिया गया।

5. उड़ीसा और सिंध दो नये प्रांत बनाये गये तथा उत्तर-पश्चिम सीमांत प्रांत को गवर्नर के अधीन रख दिया गया।

अधिनियम का मूल्यांकन

गवर्नर-जनरल को प्रदान किये गये 'विशेष संरक्षण' एवं 'विशिष्ट उत्तरदायित्व' से अधिनियम के वास्तविक क्रियान्वयन में रुकावटें आयीं।"

• प्रांतों में भी गवर्नर को असीमित अधिकार थे।

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner

• पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था ने कालांतर में साम्प्रदायिकता को उभारा तथा अंततः इसकी दुःखद परिणति 1947 के भारत के विभाजन के रूप में हुई।

• इस अधिनियम ने एक अनम्य (Rigid) संविधान प्रस्तुत किया, जिसमें आंतरिक विकास की कोई संभावना नहीं थी। संविधान संशोधन की शक्ति का ब्रिटिश संसद में निहित होना एक बड़ा दोष था।

• अधिनियम की संघीय व्यवस्था दोषपूर्ण थी। अधिनियम में जिस संघ के निर्माण की परिकल्पना की गयी थी, उसके प्रति न तो सरकार गंभीर थी न ही उसने इसके लिये कोई निश्चित प्रावधान किये थे। संघ में शामिल होने या न होने का निर्णय देशी रियासतों की मर्जी पर छोड़ दिया गया था। इसलिये संघ निर्माण की अवधारणा कभी पूर्ण नहीं हो सकी।

• इस अधिनियम ने केंद्र पर द्वैध शासन थोप दिया। जिस द्वैध शासन को साइमन कमीशन ने दोषपूर्ण बताया था, उसी व्यवस्था को केंद्र पर थोप दिया गया।

• इसमें भारत के राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा की गयी।

• प्रांतीय स्वायत्तता नाममात्र की ही थी।

अंग्रेजी सरकार की दीर्घकालिक रणनीति

1935 से 1939 की अवधि में अंग्रेजी सरकार ने जो दीर्घकालिक रणनीति तय की, उसके मुख्य बिन्दु इस प्रकार थे–

• अंग्रेजी सरकार का मत था कि दमन एक अस्थायी उपाय है। लंबी अवधि के लिये दमन की रणनीति अपनाने पर कांग्रेस का एक बड़ा तबका संघर्ष के संवैधानिक तरीकों को छोड़कर हिंसा का रास्ता स्वीकार कर सकता है। इसलिये दमन का मार्ग उचित नहीं है।

• उदारवादी तथा संवैधानिक नरमपंथी, जो सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान जन-समर्थन खो चुके हैं, सुधारों के द्वारा सरकार की ओर आकर्षित हो जायेंगे।

• संवैधानिक तथा अन्य रियासतों द्वारा संवैधानिक संघर्ष में आस्था रखने वाले लोगों को सरकार के प्रति निष्ठावान बनाया जा सकेगा और जन-आंदोलन की मुख्य धारा से पृथक किया जा सकेगा।

• एक बार सत्ता के स्वाद को चख लेने के पश्चात कांग्रेसी संघर्ष और बलिदान की राजनीति में वापस नहीं लौटेंगे।

• सुधारों के सवाल पर कांग्रेस विभाजित हो जायेगी तथा कांग्रेस में वामपंथियों तथा संविधानवादियों और दक्षिणपंथियों में संघर्ष प्रारंभ हो जायेगा। इससे राष्ट्रीय आंदोलन कमजोर पड़ जायेगा। तदुपरांत उदारवादियों को सुधारों से लुभाकर सरकार अपनी ओर कर लेगी तथा वामपंथियों को दमन से कुचल दिया जायेगा।

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner

प्रमुख विचार

भारत शासन अधिनियम 1935 इसलिये पास किया गया, क्योंकि हम समझते थे कि भारत पर अंग्रेजी प्रभुत्व बरकरार रखने का.....यह सर्वोत्तम तरीका है।

लार्ड लिनलिथगो, वायसराय (1936-43)

हमें एक ऐसी कार दी गयी है, जिसमें अनेक ब्रेक हैं किंतु इंजन का अभाव है।

जवाहरलाल नेहरू, (1935 के अधिनियम के संदर्भ में)

भारत में संवैधानिक सुधारों की प्रक्रिया को प्रारंभ करना, उपनिवेशी शासन की ओर भारतीयों को आकृष्ट करने की चेष्टा है।

बी.आर. टॉमलिंसन

• प्रांतीय स्वायत्तता लागू होने से सशक्त प्रांतीय नेताओं का उदय होगा तथा धीरे-धीरे प्रांत राजनीतिक शक्ति के स्वायत्त केंद्र बन जायेंगे। इससे कांग्रेस प्रांतीय स्तर पर सिमट कर रह जायेगी तथा कांग्रेस का केंद्रीय नेतृत्व महत्वहीन तथा उपेक्षित हो जायेगा।

राष्ट्रवादियों की प्रतिक्रिया

1935 के अधिनियम का सभी भारतीयों ने विरोध किया तथा कांग्रेस ने इसे एक स्वर से नामंजूर कर दिया। इन विचारों के स्थान पर कांग्रेस ने स्वतंत्र भारत के लिये संविधान बनाये जाने की मांग की। उसने मांग की कि अतिशीघ्र एक संविधान सभा का गठन किया जाये तथा इसके सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर हो।

Scanned with CamScanner

Scanned with OKEN Scanner